खरतर गच्छ की क्रान्तिकारी और अध्यात्मिक-परम्परा

- श्री भँवरलाल नाहटा

आर्यावर्त्त के धर्म-शरीर की आत्मा जैनधर्म है। जिस प्रकार आत्मा के बिना समस्त शरीर शव के सदृश होता है, उसी प्रकार समस्त शुष्क क्रिया काण्ड यदि उनमें अध्यात्मिकता का अभाव हो तो वे केवलकाय-क्लेश मात्र होते हैं। आधिभौतिक साधना से आत्म शांति नहीं मिलती। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब भगवान महावीर का प्रादुर्भाव हुआ, जनता त्रिविधताप सतप्त थी। शांति के लिए तड़फते प्राणियों को मृग-मरीचिका के चक्कर में गोते लगाने के सिवा परिणाम शून्य था। जहां वेद-पुराणादि सभी शास्त्र भौतिक शिक्षा एवं एकान्तिक आत्म प्ररूपणा तक सीमित रह गए, जैनागमों का प्रथम अंग आचारांग "आत्मा क्या है ?" इस प्राइमरी शिक्षा का उद्घोष करता है। भगवान महावीर ने आत्मदर्शन को प्रधानता दी और लाखों वर्षों की शुष्क अज्ञान तपश्चर्या को व्यर्थ और ज्ञानी-आत्मज्ञानी की क्रिया-चर्या को सार्थक बतलाया। वह श्वासोश्वास में करोड़ों वर्षों के पापों को क्षय कर देता है। इसीलिए उन्होंने "अप्प नाणेण मुणी होई" कहा। बाह्य उपकरणों के मेरु जितने ढेर लगाकर भी कार्यसिद्धि में अक्षम बताकर आत्मज्ञानी श्रमणत्व की नींव दृढ की। धार्मिक क्षेत्र में फैले ढोंग रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए आत्मज्ञान की दिव्य ज्योति प्रकट की। चित्तवृत्ति प्रवाह बाहर भटकने से रोक कर अन्तर्मुखी करके अखण्ड आनंद प्राप्ति की कला बता कर निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करने में भगवान की अमृत वाणी बड़ी ही अमोघ सिद्ध हुई। लाखों प्राणी निर्वाण मार्ग के पथिक होकर अप्रमत्त साधना में लग कर आत्मकल्याण करने लगे। भगवान महावीर ने अपनी साधना का केन्द्र बिन्दु आत्म-विशुद्धि व आत्म साक्षात्कार को माना। साढ़े बारह वर्ष पर्यन्त ध्यान, मौन, कायोत्सर्गादि द्वारा बाहरी आकर्षणों से चित्तवृत्ति और प्रवृत्ति को हटा कर आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों को विकसित किया। देहात्म बुद्धि को मिथ्यात्व बतलाते हुए सम्यग्दर्शन ही वास्तव में आत्मदर्शन है, इसके प्राप्त होने पर सांसारिक या पौद्गलिक विषयों की आसक्ति स्वयं छूट जाती है, बतलाया। केवलज्ञान, केवलदर्शन आत्मा की पूर्ण निर्मलता, विशुद्धता द्वारा प्राप्त आत्मा की चैतन्य शक्ति का परिपूर्ण विकास ही है। आचारांग सूत्र में उन्होंने कहा है, जो एक आत्मा को जान लेता है वह सब को जान लेता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है – आत्मा ही अपना शत्रु और आत्मा ही अपना मित्र है, बाहरी शत्रुओं से युद्ध करने का कोई अर्थ नहीं; आत्मा के शत्रु राग, द्वेष, मोह हैं उन्हीं पर विजय प्राप्त करो। बाह्य तपश्चर्या आत्मलीनता हेतु और देहासक्ति के परित्याग रूप है। छः आवश्यकों में कायोत्सर्ग देहासक्ति का त्याग रूप ही है क्योंकि पुद्गल मोह मिटे बिना अन्तर्मुख वृत्ति नहीं होती और आत्मदर्शन नहीं होता। इच्छा ही बंधन है, इच्छा निरोध ही तप और आत्म-रमणता ही चारित्र है। हमारे समस्त धर्माचरणों का उद्देश्य आत्म विशुद्धि ही होना चाहिए। आत्म'केन्द्रित साधना ही सही मोक्ष मार्ग है।

भगवान महावीर की इस अध्यात्मिक परम्परा को अनेकों भव्यात्माओं ने अपनाते हुए आत्म कल्याण किया। समय-समय पर जो बहिर्मुखता की अभिवृद्धि हुई उसे दूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के लिए ही जैनाचार्यों-मुनियों ने क्रिया उद्धार किया अर्थात् शिथिलाचार का परित्याग करके अध्यात्मिक मार्ग का पुनरुद्धार किया। मध्यकालीन चैत्यवास शिथिलाचार का एक प्रवहमान श्रोत था जिसमें बड़े-बड़े आचार्य और मुनिगण बहते चले गए फलतः अध्यात्मिक साधना क्षीण हो गई, आडम्बर और क्रिया काण्डों का आधिक्य हो गया। जनता को भी भगवान महावीर की अध्यात्मिक शिक्षाएं मिलनी कठिन हो गईं। जैनसंघ को अध्यात्मिक प्रेरणा देने वाले क्रान्तिकारी आचार्यों की युग पुकारने आचार्य हरिभद्र, जिनेश्वरसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि मणिधारी जिनचंद्रसूरि, और जिनपतिसूरि जैसे युगप्रधान आचार्यों को जन्म दिया जिन्होंने जैनचैत्यों और मुनियों के आचारों में आई हुई विकृति का प्रबल पुरुषार्थ द्वारा परिहार किया और सुविहित मुनि मार्ग का पुनरुद्धार किया।

आचार्य जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवास पर एक प्रबल चोट करके उसकी जड़ें हिला दी जिनवल्लभ और जिनदत्त सूरिजी ने जगह-जगह घूमकर जनता में जागृति पदाकर युग परिवर्त्तन कर डाला और जिनपतिसूरिजी ने तो रही सही शिथिलाचार की प्रवृत्तियों का बड़े बड़े आचार्यों से लोहा लेकर नाम शेष ही कर डाला।

मानव स्वभाव की कमजोरी के कारण शनैः शनैः शिथिलाचार फिर बढ़ता गया और समय-समय पर सुविहित आचार को प्रतिष्ठित करने के लिए क्रियोद्धार की परम्परा भी चलती रही। सोलहवीं शताब्दी में तपागच्छ के आनन्दविमलसूरि आदि ने क्रियोद्धार किया तब खरतरगच्छ के जिनमाणिक्यसूरि ने भी आचार शैथिल्य को दूर करने की प्रबल भावना की और इसके लिए देरावर पूज्य दादा जिनकुशलसूरि जी के मङ्गलमय आशीर्वाद के लिये प्रस्थान किया पर मार्ग में ही स्वर्गवास हो जाने से उनकी भावना मूर्त्त रूप न ले सकी इस समय खरतरगच्छ के उपाध्याय कनकतिलक ने क्रियोद्धार किया। सं० १६१२ में श्रीजिन माणिक्यसूरि के पट्टपर श्रीजिनचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित हुए, उन्होंने अपने गुरु की अंतिम इच्छाको बड़े अच्छे रूप में पूर्ण किया। बीकानेर के मंत्री संग्रामसिंह बच्छावत की विज्ञप्ति से सं० १६१३ में बीकानेर आकर उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि जो साध्वाचार की ठीक से पालन करना चाहते हों वे मेरे साथ रहें और जो पालन न कर सकें वे वेश को न लजा कर गृहस्थ हो जायँ। कहा जाता है कि उनके शंखनाद से तीन सौ यतियों मे से केवल १६ उनके साथी साथी बने अवशेष साधुवेश परित्याग कर गृहस्थ महात्मा मथेरण कहलाये। उपाध्याय भावहर्ष ने क्रियोद्धार करके अपने साधु समुदाय को व्यवस्थित किया जो आगे चलकर भावहर्षीय शाखा के कहलाये। युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि का लोकोत्तर प्रभाव बढ़ा फलतः सम्राट अकबर भी उनसे प्रभावित हुआ। जहाँगीर को भी अपनी अनुचित आज्ञा वापस लेनी पड़ी। जैन शासन का वह स्वर्ण युग था, उस समय अनेक विद्वान हुए जिनके साहित्य ने जैनधर्म का गौरव बढ़ाया।

आचार्य जिनराजसूरि के बाद फिर साध्वाचार पालन में थोड़ी शिथिलता आगई अतः श्रीजिनरत्नसूरिजी पट्टधर जिनचन्द्रसूरि ने फिर से नये नियम बनाए। जिनराजसूरि और जिनचन्द्रसूरि के मध्यकाल में ही सुप्रसिद्ध अध्यात्म अनुभव योगी आनन्दघनजी हुए जिनका मूल नाम लाभानन्द जी था। वे मूलतः खरतरगच्छ के थे। मेड़ता में ही जन्म और उच्च आत्म साधनरत विचर कर मेड़ता में ही स्वर्गवासी हुए। उनका उपाश्रय आज भी वहाँ मौजूद है। परमगीतार्थ आचार्य कृपाचन्द्रसूरि जी ने योग-निष्ठ आचार्य बुद्धिसागर जी को आनन्दघन जी के मूलतः खरतरगच्छीय होने की जो बात कही थी उसकी पुष्टि आगम-प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी को प्राप्त खरतर गच्छीय श्री पुण्यकलश गणि के शिष्यों को लाभानन्दजी के अष्टसहस्री पढ़ाने के उल्लेख द्वारा भी हो गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघन (भद्र मुनिजी) महाराज
जन्म सं० १९७० भा० सु० १० डुमरा दीक्षा सं० १९९० वै० सु० ६ लायजा
युगप्रधान पद सं० २०१८ ज्ये० सु० १५ बोरड़ी
महाप्रयाण सं० २०२७ का० सु० ३ रत्नकूट हम्पी

चित्र—श्री इन्द्र दूगड़
(जैन भवन कलकत्ता के सौजन्य से)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

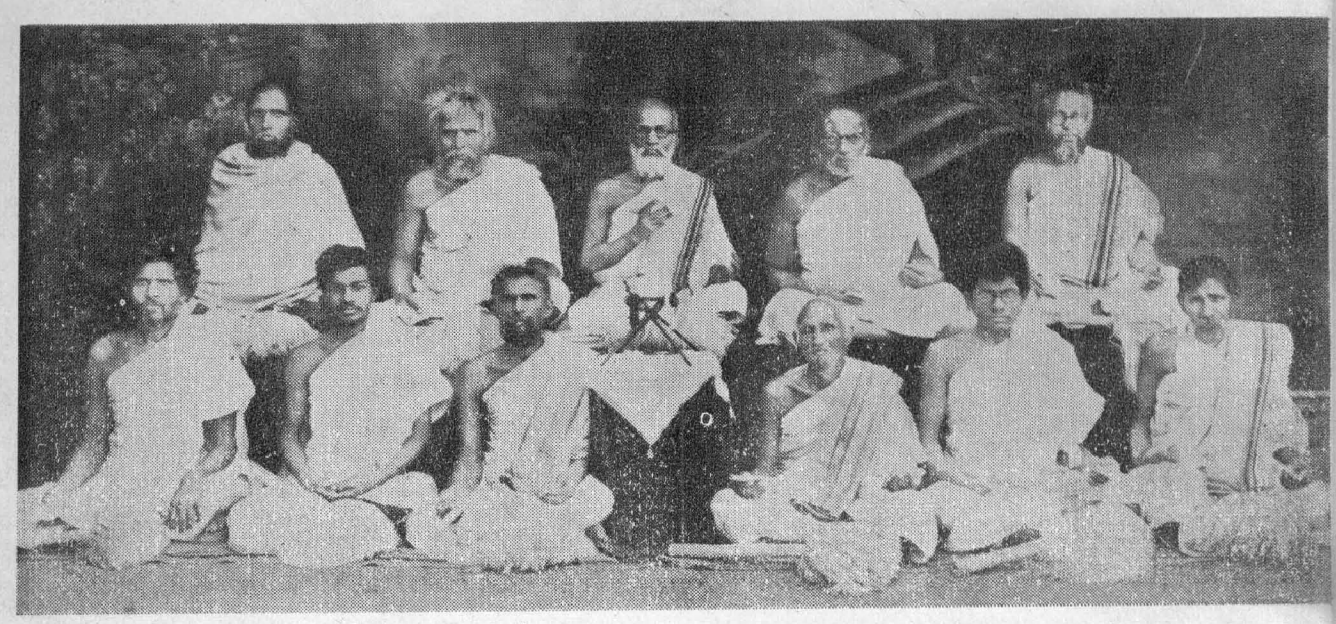

सं० १९९४ पालीताना में
पंक्ति (१) १ श्री बुद्धिमुनिजी २ उ० श्री लब्धिमुनिजी
३ गणिवर्यरतनमुनिजी ४ भावमुनिजी ५ प्रेममुनिजी
पंक्ति (२) श्रीनन्दनमुनिजी २ श्रीभद्रमुनिजी ३ दर्शन
मुनिजी ४ पूर्णानन्दमुनिजी ५ प्रेमसागरजी

श्रीजयानन्दमुनिजी

गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सतरहवीं शती के "सुमति" नामक खरतरगच्छीय कवि अध्यात्मरसिक हुए हैं। जिनके कतिपय पद तत्कालीन लिखित हमारे संग्रह के दो गुटकों में मिले जो "वीर वाणी" में प्रकाशित किये हैं।

सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिनप्रभसूरि शाखा के विद्वान भानुचन्द्रगणि से शिक्षा प्राप्त श्रीमालज्ञातीय बनारसीदास नामक सुकवि हुए। उन्होंने दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के समयसारादि ग्रन्थों से प्रभावित होकर अध्यात्म मार्ग को विशेष रूप से अपनाया जिससे उनका मत अध्यात्म मती-बनारसीमत नाम से प्रसिद्ध हो गया। थोड़े समय में ही इस अध्यात्म मत का दूर दूर तक जबर्दस्त प्रभाव फैला। मुदूर मुलतान के कई खरतरगच्छीय ओसवाल श्रावकों ने भी उससे अध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की; फलतः उधर विचरने वाले सुमतिरंग, धर्ममन्दिर, और श्री मद्देवचन्द्रजी ने कई महत्वपूर्ण अध्यात्मिक रचनायें उन्हीं आध्यात्मिरसिक श्रावकों की प्रेरणा से की। बनारसीदासजीका समयसार, बनारसी विल स, अर्द्ध कथानक आदि साहित्य उल्लेखनीय है।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज अकबर-प्रतिबोधक चतुर्थ दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य श्री पुण्यप्रधानोपाध्याय की शिष्य-परम्परा में उ० दीपचन्द्रजी के शिष्य थे। आपका जन्म सं० १७४६ में बीकानेर के किसी गांव में लूणिया तुलसीदासजी के यहां हुआ। लघुवय में दीक्षा लेकर श्रुतज्ञान की जबदरस्त उपासना की। आप अपने समय के महान् प्रभावक, अतिशय-ज्ञानी और अद्वितीय अध्यात्म तत्त्ववेत्ता थे। आपकी १९ वर्ष की अवस्था में रचित ध्यानदीपिका चौपई जैसी रचनाओं से आपके प्रौढ़ पाण्डित्य और अध्यात्म ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। चौवीसी आदि रचनाओं में आपने तत्त्वज्ञान और भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित की है। स्नात्रपूजा आदि कृतियाँ भक्ति की अजोड़ स्रोतस्विनी हैं। आपकी कृतियों का संकलन करके ४५-५० वर्ष पूर्व योगनिष्ठ आचार्य-प्रवर श्रीबुद्धिसागरसूरिजी ने अध्यात्म-ज्ञान-प्रसारक मंडल से श्रीमद्देवचन्द्र भाग-१-२ में प्रकाशित की थी एवं आचार्य महाराज ने आपकी संस्कृत स्तुति आदि में बड़ी ही भक्ति प्रदर्शित की है। श्रीमद्देवचन्द्रजी ने क्रियोद्धार किया था, वे सर्वगच्छ समभावी और जैनशासन के स्तम्भ थे। आपने सं० १८१२ भा० व० १५ के दिन नश्वर देह का त्याग किया। विशिष्ट महापुरुषों द्वारा ज्ञात अनुश्रुतियों के अनुसार आप वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में केवली पर्याय में विचरते हैं।

श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज के रास–देवविलास में आपके ध्रांगध्रा पधारने पर जिन सुखानन्दजी महाराज से मिलने का उल्लेख आया है वे सुखानन्दजी भी खरतरगच्छ के ही अध्यात्मी पुरुष थे उनके कई पद आनन्दघन बहुत्तरी में प्रकाशित पाये जाते हैं तथा कई तीर्थंकरों व दादासाहब के स्तवन भी उपलब्ध हैं। दीक्षानन्दी सूची के अनुसार आप सुगुणकीर्ति के शिष्य थे और सं० १७२८ पोष बदि ७ को बीकानेर में श्रीजिनचन्द्रसूरि द्वारा दीक्षित हुए थे। सं० १८०५ में ध्रांगध्रा प्रतिष्ठा के समय देवचन्द्रजी से बड़े प्रेमपूर्वक मिले उस समय आपकी आयु ९० वर्ष से कम नहीं होगी। श्रीसुखानन्दजी की कृतियां अधिक परिमाण में मिलनी अपेक्षित है।

उन्नीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय विद्वानों में श्रीमद्ज्ञानसारजी बड़े ही अध्यात्मयोगी हुए हैं जिन्हें छोटे आनन्दघनजी कहा जाता है। इनकी चौवीसी, बीसी, बहुत्तरी इत्यादि संख्याबद्ध कृतियां हमारे "ज्ञानसार ग्रन्थावली" में प्रकाशित हैं। श्रीमद् आनन्दघनजी की चौवीसी और बहुत्तरी के कई पदों पर आपने वर्षों तक मनन कर बालावबोध लिखे हैं जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आपका जन्म सं० १८०१ दीक्षा सं० १८२१ और स्वर्गवास सं० १८९८ में हुआ था। आपका दीर्घजीवन त्याग, तपस्या, उच्चकोटि की साहित्य साधना व योग साधनामय था। बड़े-बड़े राजा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाराजाओं पर आपका बड़ा प्रभाव था। इनकी जीवनी के सम्बन्ध में हमारी 'ज्ञानसार ग्रन्थावली' द्रष्टव्य है।

उन्नीसवीं शताब्दी में काशी में खरतरगच्छ के उपाध्याय श्री चारित्रनन्दी गणि परम गीतार्थ थे। जिनके गुरु निधि उपाध्याय के दो शिष्य चिदानन्द जी (कपूरचन्दजी) और ज्ञानानन्द जो बड़े उच्चकोटि के कवि और आध्यात्मिक पुरुष हुए हैं। श्री चिदानन्दजी महाराज का स्वरोदय ग्रन्थ उनकी योगसाधना और तद्विषयक ज्ञान का अच्छा परिचायक है, आपकी पुद्गल-गीता, बावनी, बहुत्तरी-पद और स्तवनादि भी उच्चकोटि की काव्यकला और अनुभव ज्ञान से ओतप्रोत हैं। कविताओं का सर्जन, सौष्टव, फबते उदाहरण और हृदयग्राही भाव अत्यन्त श्लाघनीय हैं। आप गुजरात-भावनगर आदि में काफी विचरे थे। भावनगर की जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा चिदानन्दजी सर्वसंग्रह दो भागों में आपकी समस्त कृतियाँ प्रकाशित हैं।

श्री चिदानन्दजी के गुरुभ्राता श्री ज्ञानानन्दजी भी उच्चकोटि के अध्यात्म योगी थे। आपके शताधिक पदों का संग्रह ज्ञानविलास और संयमतरंग रूप में साठ वर्ष पूर्व वीरचन्द पानाचन्द ने प्रकाशित किया था। श्रीचिदानन्द जी महाराज पहले पावापुरी में गांवमन्दिर के पृष्ठ भाग की कोठरी में ध्यान किया करते थे और पीछे गिरनारजी, पालीताना व सम्मेतशिखरजी में भी रहे। सम्मेतशिखरजी में, गिरनारजी में तथा अन्यत्र भी आपकी ध्यान-गुफाएँ प्रसिद्ध हैं। भावनगर के पास आपने छींपा जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। तीस वर्ष पूर्व जब भद्रमुनिजी महाराज भावनगर पधारे। तब उस जाति वालों ने कहा — आप खतरगच्छ के हैं। हम भी खतरगच्छ के श्रीचिदानन्दजी महाराज द्वारा प्रतिबोधित हैं

इन चिदानन्दजी और ज्ञानानन्दजी के पश्चात खरतरगच्छीय संवेगी मुनि प्रेमचन्द्रजी का नाम आता है जो गिरनार पर्वत की गुफाओं में ध्यान करते थे। इनकी गुफा गिरनार पर राजुल गुफा से दक्षिण की ओर अब भी प्रसिद्ध है एवं जूनागढ़ तलहटी में धर्मशाला से संलग्न दादावाड़ी में मकसूदाबाद निवासी श्री पूरणचन्दजी गोलछा निर्मापित इनकी चरण पादुकाएँ सं० १९२१ में जूनागढ़ संघ व तीर्थ की पेढ़ी सेठ देवचन्द लखमीचंद ने श्री जिनहंससूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित कराई थी।

बीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय योग साधनारत अध्यात्मी पुरुषों में दूसरे चिदानन्दजी महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप हाथरस के निकटवर्ती ग्राम

के अग्रवाल वैश्य थे। आपका नाम फकीरचन्द था। कलकत्ते में गंधक, सोरे की दलाली करते हुए विरक्त होकर सर्वस्वत्यागी बने और अजीमगंज जाकर शास्त्राभ्यास पूर्वक अपने को जयपुरस्थ खरतरगच्छीय श्री शिवजीरामजी महाराज के शिष्य के रूप में उद्घोषित किया। तदनन्तर पावापुरी और राजगृही में जाकर साधना की। पहले चिदानन्दजी के ध्यान स्थान में जाकर ध्यान करने पर ११वें दिन आपको आत्मानुभूति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई और गुरुकृपा से चिदानन्द नाम पाया। आपको बड़ी दीक्षा श्री सुखसागरजी महाराज ने दी थी। आपको हठयोग साधना की जानकारी बहुत जबरदस्त थी। आपने कई ग्रन्थों की रचना की थी। जिनमें (१) द्रव्यानुभव रत्नाकर (२) अध्यात्म अनुभव योगप्रकाश (३) शुद्धदेव अनुभव विचार (४) स्याद्वादानुभव रत्नाकर (५) आगम-सार हिन्दी अनुवाद (६) दयानन्दमत निर्णय (७) जिनाज्ञा विधि प्रकाश (८) आत्मभ्रमोच्छेदन भानु (९) श्रुत अनुभव विचार (१०) कुमत कुलिंगोच्छेदन भास्कर प्राप्त हैं। आपका स्वर्गवास सं० १९५९ पौष बदि ९ प्रातः १० बजे जावरा में हुआ था।

खरतरगच्छ के चारित्र सम्पन्न योगसाधकों में श्री मोती-चन्द्रजी महाराज का नाम भी उल्लेखनीय है। ये पहले लूणकरणसर के यतिजी के शिष्य थे। उत्कृष्ट वैराग्य भावना से प्रेरित हो यह साधु बने। इनकी साधना बड़ी कठोर थी। शास्त्रोक्त विधि से स्वाध्याय ध्यान के पश्चात् तीसरे प्रहर की चिलमिलाती धूप में शहर में आकर रूखा सूखा आहार लेते। ये बड़े सरलस्वभावी और ध्यानयोगी थे। हमने भद्रावती की प्राचीन गुफाओं में आपके दर्शन किये थे। आपका स्वर्गवास भोपाल में हुआ था। तपस्वी श्री चारित्रमुनिजी आपके ही शिष्य थे। भद्रावती में आपकी प्रतिमा विराजमान कर संघ ने आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। आपकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

खरतरगच्छ की आध्यात्मिक परम्परा-भवन के शिखर सदृश वर्त्तमान के अन्तिम महापुरुष श्रीभद्रमुनिजी—सहजा-नन्दघनजी हुए हैं जिनका अभी-अभी मिती कार्तिक सुदी २ को हम्पी में निर्वाण हुआ है। आपकी साधना अद्भुत, अलौकिक और बड़ी ही कठिन थी। आपका जन्म सं० १९७० मिती भाद्रपद शुक्ला १० के दिन कच्छ के डुमरा गाँव में हुआ था। उन्नीस वर्ष की अवस्था में बम्बई भातबाजार में आपको ध्यान-समाधि लग गई जिसके

प्रभाव से संसार से विरक्ति होकर सिद्धभूमि में जाकर वृक्षवत् साधना करने की आत्मप्रेरणा हुई। इस काल में ऐसी कठिन साधना असम्भव बता कर समुदाय में साधु जीवन अमुक काल तक बिताने की आज्ञा पाकर पुनशीभाई की प्रेरणा से खरतरगच्छीय श्री मोहनलालजी महाराज के प्रशिष्य चारित्र-चूड़ामणि गणिवर्य श्रीरत्नमुनिजी (आचार्य श्री जिनरत्नसूरि) के पास सं० १९८९ कच्छ देश के गांव लायजा में दीक्षित हुए। उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी के पास अल्पकाल में समस्त शास्त्रों का अभ्यास किया। आप षड्भाषा व्याकरण, काव्य, कोश, छंद, अलंकार आदि के प्रकाण्ड विद्वान बने। बारह वर्ष पर्य्यन्त गुरुजनों की निश्रा में चारित्र की उत्कृष्ट साधना करते हुए विचरे। सं० २००३ मिती पोष सुदि १४ सोमवार संध्या ६ बजे अमृत वेला में आपने मोकलसर गुफा में प्रवेश किया। वहां ऊपर बाघ की गुफा थी और इस गुफा में भी दो विषधर साँप रहते थे, जिसमें कठिन साधना की। सं० २००४ की कार्तिक पूर्णिमा को विहार कर वहां से गढ़-सिवाणा पधारे। तत्पश्चात् पाली, ईडर आदि स्थानों में गुफावास किया। ईडर में तप्त-शिलाओं पर घण्टों कायोत्सर्ग करते थे। चारभुजा रोड (आमेट) में चन्द्रभागा तटवर्त्ती गुफा में केवल एक पंछिया और एक चद्दर के सिवा अन्य वस्त्र के बिना, कड़ाके की ठण्ड में तप करते रहे। प्रति-दिन ठाम चौविहार एकाशना तो वर्षों से चलता ही था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह भी हाथ में अल्प आहार करते थे। नये कर्मबन्ध न हों और उदयाधीन कर्मों को खपाने का अद्भुत प्रयोग आपने मौन रहते हुए किया। फिर हृषीकेश, उत्तर काशी और पंजाब के स्थानों में निर्विकल्प भाव से विचरते हुए सं० २०१० में महातीर्थ समेतशिखरजी पधारे। मधुवन व पहाड़ पर श्रीचिदानन्दजी महाराज की गुफा में रह कर तपश्चर्या की। वहां से विहार कर वीरप्रभु की निर्वाणभूमि पावापुरी में पधार कर छः सात मास रहे। दहाणु की लोहाणा वकील पुरषोत्तम प्रेमजी पौंडा की पुत्री सरला के लिये समाधि-शतक रचकर मौन साधना में भी एक घण्टा प्रवचन करके उसे समाधिमरण कराया। आत्मभावना की अखण्ड धुन प्रवाहित कर राजगृहादि यात्रा कर गया होते हुए गोकाक पधारे। वहां तीन वर्ष अखंड मौन साधना में गुफावास किया। इस समय ठाम चौविहार में केवल दूध और केला के सिवा अन्नादि का त्याग था। फिर मध्य प्रदेश में पधार कर तारणपंथ के तीर्थ धाम निसिईजी में कुछ दिन रह कर आत्मसिद्धि का हिन्दी पद्यानुवाद करके प्रवचन किया। मथुरा, बीकानेर आदि पधार कर सं० २०१४ का चातुर्मास प्राचीन तीर्थ खण्डगिरि (भुवनेश्वर) में बिताया। तीर्थयात्रा करते हुए क्षत्रियकुण्ड पहाड़ पर तपस्वी साधक श्रीमनमोहनराजजी भणशाली के आग्रह से दो मास रहे। फिर हृषीकेश आदि स्थानों में होकर मध्यप्रदेश पधारे और चातुर्मास ऊन में बिताया। फिर बीकानेर पधारे, जैसलमेर की यात्रा की। शिववाड़ी और उदरामसर के धोरों में रहकर बोरड़ी पधारे। सं० २०१८ के ज्येष्ट शुक्ला १५ की रात्रि में सातसौ नर-नारियों की उपस्थिति में दिव्य वस्तुओं के साथ युगप्रधान पद का श्लोक प्रकट हुआ जिसके साक्षी स्वरूप अनेक विशिष्ट व्यक्ति विद्यमान थे। तत्पश्चात् क्रमशः पूर्व जन्मों की साधना भूमि हम्पी पधारे जो रामायणकालीन किष्किन्ध्या और मध्यकाल के विजयनगर का ध्वंशावशेष है। वहां १४० जैन मन्दिर वाले हेमकूट पर कुछ दिन रहकर सामने की पहाड़ी रत्नकूट की गुफा में अधिवास किया। श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम की स्थापना हुई। मैसूर सरकार और हेमकूट के महन्त जागीरदार ने समूचा पहाड़ जैन संघ को निशुल्क भेंट किया। जहाँ के भयानक वातावरण में दिन में भी लोग जाने में हिचकिचाते थे, आपके विराजने से दिव्यतीर्थ हो गया। बहुत से मकान और गुफाओं का निर्माण हुआ। विद्युत् और जल की सुविधा तो है ही। श्रीमद्राजचन्द्र जन्मशताब्दी के अवसर पर पक्की सड़क का निर्माण हो गया है जिससे मोटरें भी ऊपर जाती हैं। विशाल व्याख्यान हाल, फ्री भोजनालय आदि तो हो ही गये, विशाल मन्दिर और दादावाड़ी के निर्माण की भी योजनाएँ हैं। प्रतिवर्ष लाखों रुपयों का आमद-खर्च है। पर्यूषण में तो उस निर्जन स्थल में चार पाँच सौ व्यक्ति पर्वाराधन करते रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल और मध्यान्ह के प्रवचन में भी बहुत से भावुक लाभ उठाते रहे। आपने तीन वर्ष पूर्व समस्त तीर्थ यात्रा और पचासों स्थानों में भ्रमण करके जो व्यक्ति हम्पी नहीं पहुँच सकते थे उन्हें भी अपनी अमृत वाणी से लाभान्वित किया। आप ध्यान और योग के पारगामी थे। चंचल मन को वश करने, देहाध्यास मिटा कर आत्मदर्शन प्राप्त करने की शास्त्रीय कुंजियाँ आपके हस्तगत थीं। आप की प्रवचन शैली अद्वितीय थी। तत्त्वज्ञान और अध्यात्मवाद जैसे शुष्क विषय की निरूपण-शैली आपकी अजोड़ थी। हजारों श्रोताओं के मनोगत प्रश्नों को बिना प्रश्न किये प्रवचन में समाधान कर देने की अद्भुत प्रतिभा थी। अनेक सद्गत महापुरुषों से आपका संपर्क था, और दिव्य सुंगधी दिव्य वृष्टि आदि होते रहते। अनेक लब्धि सिद्धियाँ जो युगप्रधान पुरुष में स्वाभाविक प्रगट होती हैं, विद्यमान रहते हुए भी कभी उस तरफ लक्ष्य नहीं करते। ज्वर, सर्दी आदि व्याधि की कृपा बनी रहती पर कर्म खपाने के लिये वे उसका स्वागत करते और औष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धादि का प्रयोग न कर उदयागत कर्मों को भोगकर नाश करना ही उनका ध्येय था। ऐसे समय में उनकी ध्यान समाधि और भी उच्चस्तर पर पहुँच जाती। सत्य है जिसे देहाध्यास नहीं, आत्मा के शास्वत अविनाशीपन का अखण्ड ज्ञान है उसे शरीर की चिन्ता हो भी कैसे सकती है ? तो इस प्रकार की आत्मरमणता और शरीर के प्रति निर्मोहीपन से आप के शरीर को अर्शव्याधि ने जोर मारा और अशक्ति बढ़ती गई। गत पर्युषण पर देह व्याधि का ख्याल न कर श्रोताओं को अपने प्रवचनों का खूब लाभ दिया। २८ कीलो से भी क्रमशः शरीर क्षीण होता गया घटता गया पर सतत आत्मचिन्तन में रहे उन महायोगी ने गत कार्तिक शुक्ल २ की रात्रि में इस नश्वर देह का त्याग कर दिया।

दादा साहब श्री जिनदत्तसूरिजी आदि गुरुजनों के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी और आपका जीवन भी उन्हीं के पथ-प्रदर्शन में उदयाधीन प्रवृत्त था। दादा साहब ने ही आपको "तू तेरा संभाल" ध्येय मत्र देकर आत्म साक्षात्कार की प्रेरणा दी थी। वर्तमान जैन समाज अपने आत्म दर्शन मार्ग से हजारों योजन दूर चला गया है और शास्त्र-निर्दिष्ट आत्मसिद्धि से वंछित आत्म-रमणता से दूर केवल बाह्य चकाचौंध में भटका हुआ है। इस वर्तमान प्रवृत्ति मे आपकी भाव दया प्रेरित उपकार बुद्धि आत्मदर्शन की प्रेरणा देती रही। आपके हृदय में गच्छों की तो बात ही क्या पर दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद-भावों को भी मिटा देने की भावना थी वे स्वयं दिगम्बर अध्यात्मिक ग्रंथों को अध्ययन करते और उन्होंने उन ग्रंथों को भाषा पद्यों में गुंफित कर अध्यात्मिक जगत् का महान् उपकार किया है। नियमसार, समाधिशतक आदि कृतियां उसी का परिणाम है। श्रीमद् आनंदघन जी की चौबीसी का आपने १७-१८ स्तवनों तक का मननीय विवेचन लिखा व पदों का भी अर्थ संकलन किया था। आपने प्राकृत व भाषा में दादा साहब के स्तोत्र स्तवनादि रचे चैत्यवन्दन चौबीसी, अनुभूति की आवाज, संख्याबद्ध स्तवन व पदों का निर्माण किया। पचीस तीस वर्ष पूर्व आपने प्राकृत व्याकरण की भी रचना की थी जिसे गुफावास की एकाकी भावना ने अलभ्य कर दिया। इसी प्रकार "सरल-समाधि" की दोनों कापियाँ जिसमें अपनी प्रसिद्धि की संभावना समझ कर तीव्र वैराग्यवश अप्राप्य कर दिया। गुरुवर्य श्री जिनरत्नसूरि जी व विद्यागुरु उपाध्याय जी श्री लब्धिमुनिजी की स्तवना में संस्कृत व भाषा में कई पद्य रचे। आपकी सभी रचनाएं प्रकाशित करने की भावना होते हुए भी हम आपकी आज्ञा न होने से प्रकाशित न कर सके। आपके प्रवचनों का यदि सांगोपांग संग्रह किया जाता तो वह मुमुक्षुओं के लिए बड़ा ही उपकारी कार्य होता।

वर्तमान युग में श्रीमद् राजचंद्र सर्वोच्च कोटि के धर्मिष्ठ, साधक और आत्मज्ञानी हुए हैं। दादा साहब की उदार प्रेरणावश आपने उनके ग्रन्थों को आत्मसात् कर अधिकाधिक विवेचन अपने प्रवचनों में किया। उनके प्रति आपकी अटूट श्रद्धा-भक्ति थी जिससे आपने श्रीमद् के अनुभव पथ को खूब प्रशस्त किया। श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ में से "तत्त्व-विज्ञान" नाम से उनकी चुनी हुई रचनाओं का संग्रह प्रकाशित करवाया। श्रीमद् देवचंद्रजी की रचनाओं का पुनः संपादन प्रकाशन करने के लिए हमें हस्तलिखित प्रतियों के आधार से "श्रीमद् देवचंद्र" ग्रंथ तैयार करने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार श्रीमद् आनंदघन जी की कृतियों (बावीसी स्तवन और पद बहुत्तरी) के पाठों को भी प्राचीन प्रतियों के आधार से सुसंपादित संस्करण प्रकाशन करने का सुझाव दिया। हमने आपके आदेशानुसार ये दोनों कार्य यथाशक्ति किये हैं और उन्हें शीघ्र ही प्रकाशन किया जायगा। हमारी भावना थी कि ये दोनों ग्रन्थ आपश्री के निरीक्षण में प्रकाशित हों पर भवितव्यता को ऐसा स्वीकार नहींथा।

खरतर गच्छ में और भी कई त्यागी वैरागी अध्यात्म प्रिय साधु साध्वी हुए हैं उनमें से प्रवर्त्तिनी स्वर्णश्री जी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में उ० श्री क्षमाकल्याण जी ने संवेगी मुनियों की परम्परा प्रारम्भ की उनमें श्री सुखसागर जी का समुदाय आज तक विद्यमान है, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यति संप्रदाय में से श्रीमोहनलालजी महाराज और श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज ने क्रियोद्धार करके पचासों साधु-साध्वियों को संयमाराधन में प्रवृत्त किए उनकी परम्परा भी चल रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org